7

नाटक लिखने का व्याकरण

इस पाठ में...

- नाटक और अन्य विधाएँ
- नाटक में समय का बंधन
- नाटक के तत्त्व
- नाटक के विषय
- नाटक में स्वीकार एवं अस्वीकार की अवधारणा
- नाटक की शिल्प संरचना

नाटक का तंत्र लेखक को खुद निश्चित करना पड़ता है। नाट्य-तंत्र के नियमों से मार्गदर्शन होगा, लेकिन ऐसा नहीं कि उनके पालन से ही अच्छा नाटक लिखा जा सकता है। विश्व के बहुत से अच्छे नाटक तो इन नियमों के अपवाद ही साबित होंगे। नाटक का माध्यम खून में उतर जाना चाहिए, संज्ञा पर उसकी छाप उठनी चाहिए–तभी कोई लेखक अच्छा नाटक लिख सकता है।

–**विजय तेंदुलकर**
मराठी नाटककार

© NCERT not to be republished

लगातार यह प्रश्न सामने आता रहा है कि कविता, कहानी, उपन्यास की तरह **नाटक** भी साहित्य के अंतर्गत ही आता है फिर इसकी रचना में क्या अंतर ज़रूरी हो जाता है। जब हम इस पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि नाटक अपनी कुछ निजी विशिष्टताओं के कारण बाकी दूसरी विधाओं से बिलकुल अलग हो जाता है। स्वयं हमारी भारतीय परंपरा में नाटक को **दृश्य काव्य** की संज्ञा दी गई है। जहाँ से नाटक अपनी निजी एवं विशेष प्रकृति ग्रहण करता है वह है उसका लिखित रूप से दृश्यता की ओर अग्रसर

'मिडनाइट चिल्ड्रेन' की रंगमंच सज्जा, इसमें फ़िल्म और रंगमंच शैलियों की संयुक्त प्रस्तुति दर्शाई गई है

होना। जहाँ साहित्य की अन्य विधाएँ अपने लिखित रूप में ही एक निश्चित और अंतिम रूप को प्राप्त कर लेती हैं, वहीं एक नाटक अपने लिखित रूप में सिर्फ़ एकआयामी ही होता है। जब उस नाटक का मंचन हमारे सामने आता है तब जाकर उसमें संपूर्णता आती है। निष्कर्ष यह है कि साहित्य की दूसरी विधाएँ पढ़ने या फिर सुनने तक की यात्रा तय करती हैं पर नाटक पढ़ने, सुनने के साथ-साथ देखने के तत्त्व को भी अपने भीतर समेटे हुए है।

नाटक लिखते समय नाटककार को नाटक की एक मूल विशेषता को हमेशा याद रखना होता है। वह है–**समय का बंधन।** समय का यह बंधन नाटक की रचना पर अपना पूरा असर डालता है, इसीलिए एक नाटक को शुरू से लेकर अंत तक एक निश्चित समय-सीमा के भीतर पूरा होना होता है। नाटककार अगर अपनी रचना को भूतकाल से अथवा किसी और लेखक की रचना को भविष्यकाल से उठाए, इन दोनों ही स्थितियों में उसे नाटक को वर्तमान काल में ही संयोजित करना होता है। यही कारण है कि नाटक के मंच-निर्देश हमेशा वर्तमान काल में लिखे जाते हैं। चाहे काल कोई भी हो उसे एक विशेष समय में, एक विशेष स्थान पर, वर्तमान काल में ही घटित होना होता है। जैसे-किसी ऐतिहासिक या पौराणिक घटना को कहानी, उपन्यास या कविता में उसके मूल संदर्भ में उसी काल में रखकर भी उसका पाठ किया जा सकता है पर नाटक में उसे हमारी आँखों के सामने ही एक बार फिर घटित होना होता है। समय को लेकर एक और तथ्य यह है कि साहित्य की दूसरी विधाओं, यानी कहानी, उपन्यास या फिर कविता को हम कभी भी पढ़ते या सुनते हुए बीच में रोक सकते हैं और कुछ समय बाद फिर वहीं से शुरू कर सकते हैं पर नाटक के साथ ऐसा संभव नहीं है।

एक नाटककार को यह भी सोचना ज़रूरी है कि दर्शक कितनी देर तक किसी कहानी को अपने सामने घटित होते देख सकता है। नाटक में किसी भी चरित्र का पूरा विकास होना भी ज़रूरी है। इसलिए समय का ध्यान रखना भी ज़रूरी हो जाता है। नाटक में **तीन अंक** होते हैं इसलिए उसे भी समय को ध्यान में रखकर बाँटने की ज़रूरत होती है। यदि हम भरत लिखित *नाट्यशास्त्र* को भी देखें तो उसमें भी नाटककारों से यह अपेक्षा की गई थी कि नाटक के हरेक अंक की अवधि कम-से-कम 48 मिनट की हो।

अब दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग है–**शब्द!** वैसे यह साहित्य की सभी विधाओं के लिए आवश्यक होता है। पर, साहित्य की ही दो विधाओं, कविता और नाटक के लिए शब्द का विशेष महत्त्व है। नाटक की दुनिया में शब्द अपनी एक नयी, निजी और अलग अस्मिता ग्रहण करता है। हमारे नाट्यशास्त्र में भी वाचिक अर्थात बोले जाने वाले शब्द को नाटक का शरीर कहा गया है। कहानी तथा उपन्यास शब्दों के माध्यम से किसी स्थिति, वातावरण या कथानक का वर्णन करते हैं या अधिक से अधिक उसका चित्रण कर पाते हैं। यही कारण है कि इसे वर्णित या फिर नैरेटिव विधा

पारसी थिएटर शैली में खेले गए नाटक का दृश्य

© NCERT not to be republished

कह दिया जाता है। कविता इससे आगे है। इसके शब्द, बिंब और प्रतीक में बदलने की क्षमता भी रखते हैं। इसी कारण सहित्य की सभी विधाओं में कविता ही नाटक के सबसे ज़्यादा निकट जान पड़ती है। वैसे कहानी या उपन्यास में भी वर्णन घटित होता है लेकिन अंतर यह है कि नाटक में वह कहानी सचमुच हमारी आँखों के सामने घटित होती है। इसी आधार पर कहा जाता है कि एक कवि सफल नाटककार भी हो सकता है। ऊपर के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए निष्कर्ष यह निकला कि नाटककार के लिए ज़रूरी है कि वह अधिक से अधिक संक्षिप्त और सांकेतिक भाषा का प्रयोग करे जो अपने आप में वर्णित न होकर क्रियात्मक अधिक हो, उन शब्दों में दृश्य बनाने की क्षमता भरपूर हो और वह अपने शाब्दिक अर्थ से ज़्यादा व्यंजना की ओर ले जाए। यह कहा भी गया है कि अच्छा नाटक वही होता है जो लिखे अथवा बोले गए शब्दों से भी ज़्यादा वह ध्वनित करे, जो लिखा या बोला नहीं जा रहा। नाटक का मात्र एक मौन, अंधकार या ध्वनि-प्रभाव कहानी या उपन्यास के बीस-पच्चीस पृष्ठों की बराबरी कर सकता है।

एक नाटक के लिए ज़रूरी होता है–उसका **कथ्य।** पहले कहानी के रूप को किसी शिल्प, फ़ॉर्म अथवा संरचना के भीतर उसे पिरोना होता है। इसके लिए नाटककार को शिल्प या संरचना की पूरी समझ, जानकारी या अनुभव होना चाहिए। यह बात हमेशा ध्यान में होनी चाहिए कि नाटक को मंच पर मंचित होना है। यही कारण है कि एक नाटककार को रचनाकार के साथ-साथ एक कुशल संपादक भी होना चाहिए। पहले तो घटनाओं, स्थितियों अथवा दृश्यों का चुनाव, फिर उन्हें किस क्रम में रखा जाए कि वे शून्य से शिखर की तरफ़ विकास की दिशा में आगे बढ़ें, यह कला उसे अवश्य आनी चाहिए।

गतिविधि

रंगमंच प्रतिरोध का सबसे सशक्त माध्यम है। क्या आप लेखक के इस विचार से सहमत है? पक्ष और विपक्ष का समूह बनाकर इस विषय पर चर्चा करें।

नाटक का सबसे ज़रूरी और सशक्त माध्यम है–**संवाद।** दूसरी किसी विधा के लिए यह कतई ज़रूरी नहीं कि वह संवादों का सहारा ले, लेकिन नाटक का तो उसके बिना काम ही नहीं चल सकता। नाटक के लिए तनाव, उत्सुकता, रहस्य, रोमांच और अंत में उपसंहार जैसे तत्त्व अनिवार्य हैं। इसके लिए आपस में विरोधी विचारधाराओं का संवाद ज़रूरी होता है। यही कारण है कि नायक-प्रतिनायक, सूत्रधार की परिकल्पना भारतीय या पश्चात्य नाट्यशास्त्र में आरंभ से ही की गई थी।

वह कौन-सी चीज़ है जो एक सशक्त नाटक को एक कमज़ोर नाटक से अलग करती है। वह है–संवादों का अपनेआप में वर्णित या चित्रित न होकर क्रियात्मक होना, दृश्यात्मक होना और लिखे तथा बोले जाने वाले संवादों से भी ज़्यादा उन संवादों के पीछे निहित अनलिखे एवं अनकहे संवादों की ओर ले जाना, जिन्हें अंग्रेज़ी भाषा में **सबटैक्स्ट** कहा गया है। जिस नाटक में इस तत्त्व की जितनी ज़्यादा संभावनाएँ होंगी, वह नाटक उतना ही सफल होगा। उदाहरण के लिए हैमलेट का यह प्रसिद्ध संवाद–**टूबी और नॉट टू बी,** या स्कन्दगुप्त का **अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है,** संवाद अनगिनत संभावनाओं को उजागर कर देता है।

नाटक स्वयं में एक जीवंत माध्यम है। कोई भी दो चरित्र जब भी आपस में मिलते हैं तो विचारों के आदान-प्रदान में टकराहट पैदा होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि रंगमंच प्रतिरोध का सबसे सशक्त माध्यम है। वह कभी भी यथास्थिति को स्वीकार कर ही नहीं सकता। इस कारण उसमें **अस्वीकार** की स्थिति भी बराबर बनी रहती है। क्योंकि कोई भी जीता-जागता संवेदनशील प्राणी वर्तमान परिस्थितियों को लेकर असंतुष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। मज़े की बात यह है कि जिस नाटक में इस तरह की असंतुष्टि, छटपटाहट, प्रतिरोध और अस्वीकार जैसे नकारात्मक तत्त्वों की जितनी ज़्यादा उपस्थिति होगी वह उतना ही गहरा और सशक्त नाटक साबित होगा। उदाहरण के लिए हम *अंधायुग, तुगलक* आदि नाटकों को देख सकते हैं। यही कारण है कि जब-जब किसी भी विचार, व्यवस्था अथवा तात्कालिक समस्याओं के समर्थन में नाटक लिखे गए। वे कभी भी बहुत दिनों तक चर्चा में नहीं रहे। यही वजह है कि हमारे आधुनिक नाटककारों को राम की अपेक्षा रावण, प्रह्लाद की अपेक्षा हिरण्यकश्यप और कृष्ण की अपेक्षा कंस अधिक आकर्षित करता है।

शास्त्रीय शैली में खेले गए नाटक का एक दृश्य

नाटक लिखते समय यह भी अत्यंत ज़रूरी है कि नाटक में जो चरित्र प्रस्तुत किए जाएँ वे सपाट, सतही और टाइप्ड न हो। जिस प्रकार हम अपनी

आधुनिक नाटक की एक रंगमंच सज्जा

रोज़मर्रा की ज़िंदगी में किसी भी व्यक्ति को सिर्फ़ अच्छा या बुरा नहीं कह सकते उसी तरह नाटक की कहानी में भी चरित्रों के विकास में इस बात का ध्यान रखा जाए कि वे स्थितियों के अनुसार अपनी क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करते चलें। नाटककार नाटक के कथानक के माध्यम से जो कुछ भी कहना चाहता है उसे अपने चरित्रों और उनके बीच होने वाले परस्पर संवादों से ही अभिव्यक्त करता है। लेकिन ऐसा कभी भी न लगे कि वह पहले से निश्चित विचारों को मात्र शब्दों के माध्यम से व्यक्त कर रहा है। ऐसी स्थिति में नाटक 'नाटक' न रहकर सिर्फ़ शब्दों के रूप में विचारों का एक पुंज-सा होकर रह जाता है। हमें याद रखना चाहिए कि इन शब्दों को बोलनेवाले पात्र मंच पर सचमुच के हाड़-माँस से युक्त जीवंत प्राणी होते हैं न कि कविता, कहानी और उपन्यास में उपस्थित रहने वाले शाब्दिक चरित्र। अतः संवाद जितने ज़्यादा सहज और स्वाभाविक होंगे उतना ही दर्शक के मर्म को छुएँगे। यहाँ सहज स्वाभाविक होने से आशय भाषा की सरलता से कदापि नहीं है। संवाद चाहे कितने भी तत्सम और क्लिष्ट भाषा में क्यों न लिखे गए हों, स्थिति तथा परिवेश की माँग के अनुसार यदि वे स्वाभाविक जान पड़ते हैं तब उनके दर्शकों तक संप्रेषित होने में कोई मुश्किल नहीं होगी। इस दृष्टि से हम जयशंकर प्रसाद, मोहन राकेश, जगदीश चंद्र माथुर, धर्मवीर भारती और सुरेन्द्र वर्मा जैसे नाटककारों की भाषा में यह विशेषता देख सकते हैं। इसी के साथ जुड़ा दूसरा सवाल उस शिल्प और संरचना का भी है जिसके भीतर से नाटककार अपने कथ्य को व्यंजित करता है।

आज हिंदी के नाटककारों के पास शिल्प की दृष्टि से कई तरह के विकल्प मौजूद हैं। सबसे पहले तो *स्वप्नवासवदत्ता, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मृच्छकटिकम्* और *उत्तर रामचरित* जैसे संस्कृत नाटकों का ढाँचा है जिसे हम पारिभाषिक शब्दावली में शास्त्रीय कहते हैं, एक लोकनाटकों का फ़ॉर्म है जिसमें कोई लिखित आलेख नहीं है और सब कुछ

- *नाटक ही एक ऐसी विधा है, जो हमेशा वर्तमान काल में घटित होती है। यहाँ तक कि नाटक की कहानी बेशक भूतकाल या भविष्यकाल से संबद्ध हो, तब भी उसे वर्तमान काल में ही घटित होना पड़ता है।*
- *नाटककार को पहले घटनाओं का चुनाव करना पड़ता है, फिर उन्हें एक निश्चित क्रम में रखना होता है।*
- *एक अच्छा नाटक वही है जो कथा को आपसी बहस-मुबाहिसों से आगे बढ़ाए।*
- *नाटक और रंगमंच जैसी विधा का सृजन मूलतः अस्वीकार के भीतर से ही होता है।*

© NCERT not to be republished

मौखिक रचना प्रक्रिया के माध्यम से घटित होता है। पारसी नाटकों का अपना एक अलग शिल्प है जो शेरो-शायरी, गीत-संगीत और अतिरंजित संवादों पर आधारित होता है। इब्सन की तर्ज़ पर यथार्थवादी नाटकों का अपना एक मुहावरा है, जो मुख्यत: गद्य पर आश्रित है। इनके अतिरिक्त नुक्कड़ नाटक की अपनी अलग अहमियत है। यह नाटककार को तय करना है कि वह इनमें से किसी एक तरह के शिल्प का चुनाव करे, अलग-अलग विकल्पों के मिश्रण से अपनी एक नयी शैली तैयार करे अथवा इन सबको छोड़कर बिलकुल एक नया शिल्प लेकर प्रस्तुत हो। प्राय: कहा जाता है कि कथ्य अपना शिल्प स्वयं निर्धारित कर लेता है और यही सही स्थिति है। लेकिन जब-जब नाटककार ने पहले शिल्प या संरचना को निश्चित कर लिया और फिर उसमें किसी कथ्य कहानी को फिट करना चाहा तो ऐसी कोशिशें बहुत दूर तक कामयाब नहीं हुईं।

अभ्यास

पाठ से संवाद

© NCERT not to be republished

1. "नाटक की कहानी बेशक भूतकाल या भविष्यकाल से संबद्ध हो, तब भी उसे वर्तमान काल में ही घटित होना पड़ता है"– इस धारणा के पीछे क्या कारण हो सकते हैं?

2. "संवाद चाहे कितने भी तत्सम और क्लिष्ट भाषा में क्यों न लिखे गए हों। स्थिति और परिवेश की माँग के अनुसार यदि वे स्वाभाविक जान पड़ते हैं तो उनके दर्शक तक संप्रेषित होने में कोई मुश्किल नहीं है" क्या आप इससे सहमत हैं? पक्ष या विपक्ष में तर्क दें।

3. समाचार पत्र के किसी कहानीनुमा समाचार से नाटक की रचना करें।

4. (क) अध्यापक और शिक्षक के बीच गृह-कार्य को लेकर पाँच-पाँच संवाद लिखिए।
   (ख) एक घरेलू महिला एवं रिक्शा चालक को ध्यान में रखते हुए पाँच-पाँच संवाद लिखिए।